एंग्लो-इंडियंस: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विजय कुमार
सहायक प्राध्यापक
राजकीय महाविद्यालय हीरानगर जम्मू-कश्मीर।

एंग्लो-इंडियंस की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बीज चैदहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में मिलते हैं, जब पहली बार सन् **1498** ई. में वास्को-द-गामा न जाने कितने समुद्री मार्गों को टटोलता हुआ भारत की भूमि पर उतरा था। समुद्री मार्ग से भारत पहुँचकर उसने यूरोपीय देशों के व्यवसायियों-व्यापारियों में भारत पहुँचने की जैसे हाड़-सी मचा दी। वास्को-द-गामा की यात्रा के लगभग दो वर्ष पश्चात् सन् **1500** ई. में समुद्रों को अपने जहाज़ से लांघता हुआ पुर्तगाल का एडमिरल पेड्रो ए.कैबरल भी कोचीन पहुँचा। उसने धीरे-धीरे कोचीन राजा के साथ सघन व्यवसायिक सम्बन्ध स्थापित किया और दीर्घकाल के दौरान निरन्तर यह सम्बन्ध सघन से सघनतर ही होता गया। तत्पश्चात् सन् **1503** में तेज-तर्रार कूटनीतिक अलफंसो द ऐलब्युकर्क भारत आया।[1]

आरम्भिक कुछ वर्षों में पुर्तगाली सरकार भारत में कारोबार कर रहे अपने कंरिदों के लिए प्रत्येक वर्ष पुर्तगाली महिलाओं का जत्था नियमित तौर पर भेजती रही थी ताकि शारीरिक भूख की तृप्ति के लिए उन्हें तरसना न पड़े। इस जत्थे में वैसी पुर्तगाली महिलाएँ अधिक रहती थीं जिनका किसी कारण से विवाह नहीं हो पाता था। धीरे-धीरे पुर्तगाली सरकार को पुर्तगाल से महिलाओं को भारत भेजने का यह सिलसिला बहुत खर्चीला लगने लगा। भारत को परत-

दर परत समझने में लगे पुर्तगाली कूटनीतिक ऐलब्युकर्क ने पुर्तगाली सरकार को यह सुझाव दिया कि पुर्तगाल से महिलाओं को भेजना बंद कर दिया जाय और भारत में व्यवसाय में जुटे पुर्तगालियों को प्रोत्साहित किया जाये कि वे भारत की लड़कियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी शारीरिक तृप्ति की व्यवस्था करें। इस प्रकार ऐलब्युकर्क अपनी दूरगामी योजना कि भारतीयों के बीच पुर्तगालियों की जड़ें बहुत गहरायी से जमा दी जायें ताकि आने वाली सदियों में पुर्तगालियों का निष्कटंक शासन यहाँ स्थापित रह सके में सफल हो गया। लेकिन इस बात की कड़ी हिदायत थी कि इसके लिए कोई ज़ोर-जबरदस्ती नहीं की जाय। इस तरह ऐलब्युकर्क ने बड़ी चालाकी से भारत में पुर्तगालियों का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने में सक्रिय भूमिका निभायी।[2]

ऐलब्युकर्क ने **1510** ई. में जब गोवा को जीत लिया और फिर गोवा को ही भारत में पुर्तगालियों का सत्ता-केन्द्र रखने का निर्णय लिया तो उसके मन मे यह तस्वीर और साफ हो गई थी कि आने वाले दिनों में भारतीयों से मधुर सम्बन्ध रखने मात्र से ही बात नहीं बनेगी। उसका पक्का अनुमान था कि वह अच्छा प्रशासन देकर भी भारतीयों को बहुत दिनों तक संतुष्ट नहीं रख पायेगा। उसने अपनी योजना के पहले चरण में गोवा को चरित्र से पुर्तगाली केन्द्र बनाने की ठानी। इसके लिए एक ही अचूक सूत्र था- भारतीयों के साथ वैवाहिक या नाज़ायज़ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर सन्तान उत्पन्न करना। जिसके बीज उन्होंने पहले बो दिये थे। बाद में पुर्तगालियों के आतंक से जब बड़े-बड़े घरानों के भारतीय अपने हरम में औरतों को छोड़-छोड़कर भागने लगे तो एलव्युकर्क ने अपने पुर्तगाली सहयोगियों से कहा कि हरम में रह गयी उन

भारतीय औरतों का वे पूरा-पूरा सहयोग करें।[3] इस तरह भारतीय लड़कियों व महिलाओं से पुर्तगालियों के नाज़ायज शारीरिक सम्बन्धों ने कई नाज़ायज सन्तानों को धरती पर लाना जारी रखा। हरम में उत्पन्न वे नाज़ायज बच्चे 'हरामी' का खिताब पाते गये। पुर्तगाली बाप और भारतीय माँ से उत्पन्न बच्चे 'मेस्टाइस' और भारतीय पिता तथा पुर्तगाली स्त्री से जन्मे बच्चे 'सेस्टाइस' कहलाते थे।

पुर्तगालियों की गतिविधियाँ ज्यों-ज्यों कोचीन में बढ़ती गयी, कोचीन के दुश्मन राज्यों और विशेषकर केझीकोडा के राजा जामोरिन की बेचैनी तीव्र होती गई। कोचीन राज्य के ये विरोधी स्वयं इस फिराक में सक्रिय हो उठे थे कि पुर्तगालियों के मुकाबले वे लोग भी यूरोप के लोगों को अपने राज्य में बुलाएँ। इस तरह यूरोपीय देशों के लिए भारत के सिंहद्वार के दोनों पल्ले पूरी तरह खुलते चले गये। पुर्तगालियों का पीछा करते हुए डच भारत आए। डचों ने पुर्तगालियों के विरूद्ध निरन्तर संघर्ष जारी रखा और अन्ततः पुर्तगालियों को परास्त करने के अपने उद्देश्य में सफल हुए। सन् **1663** में डचों ने कोचीन पर अधिकार जमा लिया और अपनी विजय के प्रतीक रूप में सन् **1665** में कवीलोन में अपना एक किला भी बनवाया।[4]

पुर्तगालियों और डचों के संघर्षपूर्ण परिदृश्य में ब्रिटिश सबसे अन्त में आए और सबको ठंडा कर भारत पर लम्बे समय तक शासन किया। अंग्रेज़ों की 'इस्ट इंडिया कम्पनी' ने भारत में बहुत दृढ़ता से जड़ें जमा लीं। 'कम्पनी' के कार्यभार को सँभालने के लिए एक से एक दिग्गज भारत पहुँचने गये। सन् **1655** में जब जॉब चार्नक कम्पनी का काम देखने बंगाल पहुँचा, तब मुगल

सल्तनत चरम तनाव के दौर से गुज़र रहा था। सन् **1658** में औरंगज़ेब ने दिल्ली की गद्दी सँभाली और सन् **1707** में **89** वर्ष की उम्र में वह इस दुनिया से कूच कर गया। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् बहादुरशाह प्रथम गद्दी पर काबिज़ हुआ और अंग्रेज़ों को यह भाँपते देर नहीं लगी कि 'सोने की चिड़िया' को अब बहुत आसानी से पिंजड़े में डाला जा सकता है। कंपनी का दबदबा भारत में चारों तरफ सिर चढ़कर बोला और सन् **1750** में 'कम्पनी' का भार सँभालने वारेन-हेस्टिंग्स कलकत्ता पहुँचा। हालांकि तब भारत की सरकार बकायदे अंग्रेज़ों के हाथ नहीं आयी थी, लेकिन अंग्रेज़ों के प्रभाव से सारा देश सहमा हुआ था। सन् **1837** में क्वीन एलेक्जेण्ड्रिना विक्टोरिया को महज **18** वर्ष की उम्र में इंग्लैण्ड की राजगद्दी मिली। हिन्दुस्तान पर उनकी हुकूमत सन् **1876** से जो शुरू हुई और उनकी अन्तिम साँस तक रही। क्वीन विक्टोरिया ने **22** जनवरी, **1901** को दुनिया से कूच किया था। इसके पश्चात् ही सम्राट सप्तम एडवर्ड ने हिन्दुस्तान की बागडोर अपने हाथ में ली। सप्तम एडवर्ड के समय तक भारत एक अंग्रेज़ों का प्रभाव और अधिक बढ़ गया था।[5] पुर्तगालियों और उचों की तरह अंग्रेज़ों ने भी भारतीय महिलाओं के साथ शारीरिक सम्बन्ध जारी रखा और इस सतंप्त समुदाय की जनसंख्या बढ़ती गयी।

पुर्तगाली बाप और भारतीय माँ की सन्तान लूज़ो-इंडियन कहलाती थी, जो अठारहवीं सदी के आते-आते भारत में पुर्तगालियों के पतन के साथ सब जगह से खिसक कर बंगाल की तरफ चली आयी पर बंगाल में भी इन लोगों की स्थिति दयनीय बनी रही। जब इन लूज़ो-इंडियंस ने देखा कि अंग्रेज़ भारत में पूरे दमखम से जम गये हैं, तो अंग्रेज़ों की कृपा पाने के लिए उन लोगों ने

अंग्रेज़ों सरीखे नाम रख लिये और उनके चाल-चलन को अपना लिया। इसलिए बहुत से एंग्लो-इंडियन पुर्तगाली मूल के ही हैं। बाद में तो अंग्रेज़ों ने भी कई सन्तान उत्पन्न की और ब्रिटिश बाप से उत्पन्न हुई ये सन्तानें अपने को शासक वर्ग का मानने लगी।[6]

17वीं सदी के बीच और अठारहवीं सदी के आरम्भ में मराठा, राजपूत, मुगल और सिख लोग परस्पर बुरी तरह युद्धरत थे। भारत में जमें यूरोपियनों ने युद्ध की स्थिति में उन भारतीय राजाओं की सहायता की, जिनके वे आश्रित थे। इस दौर में यानि निरन्तर युद्ध की स्थिति के लगभग सौ वर्षों में सैनिकों की माँग स्वाभाविक रूप से बनी रही। 'ईस्ट-इंडिया कंपनी' ने युद्ध की इस स्थिति को लाभ उठाते हुए टेरीटोरिज़ को अर्जित करना आरम्भ किया। अपने भारतीय सरंक्षकों को सैन्य-सेवा सुलभ कराने के बदले में कंपनी को टेरिटोरिज़ मिल रही थी। उधर फ्रांस के साथ अलग ही इंगलैंड का घमासान युद्ध जारी था। इसलिए सैन्य संख्या बढ़ाने और मज़बूत करने के लिए 'ईस्ट-इंडिया कंपनी' ने एंग्लो-इंडियंस को पर्याप्त संख्या में सेना में भर्ती किया। उस समय अंग्रेज़ों को विश्वास था कि भारतीय औरतों से उत्पन्न उनकी यह नस्ल उनके लिए बढ़चढ़ कर वफादार रहेगी। उनका विश्वास सही निकला। अंग्रेज़ी सेना में भर्ती एंग्लो-इंडियंय' जान की बाजी लगाकर युद्ध लड़ते रहे। **18**वीं सदी के मध्यान्त तक अंग्रेज़ों ने भारत और यूरोप के अपने सभी दुश्मनों पर किला फतह कर लिया था। एंग्लो-इंडियंस की संख्या अंग्रेज़ों की सेना में अधिक बढ़ती गयी। अंग्रेज़ लोग इस समुदाय की बहादुरी पर बहुत प्रसन्न भी थे। उस समय एंग्लो-

इंडियंस के कई बच्चे इंगलैण्ड तक पढ़ने भेजे जाते रहे और पढ़-लिखकर भारत वापस लौटने पर कंपनी में उन्हें ऊँची वेतन की नौकरी भी दी जाती थी।

सन् **1600** से सन् **1785** तक एंग्लो-इंडियंस की स्थिति अच्छी थी। लेकिन **17** मार्च **1786** के एक आदेश ने एंग्लो-इंडियंस को झकझोर कर रख दिया जिसके अनुसार एंग्लो-इंडियंस के बच्चे अब पढ़ाई करने इंगलैण्ड नहीं जा सकते थे। इतना ही नहीं एक और आदेश जारी हुआ कि नेटिव इंडियंस के बच्चों को कम्पनी की सिविल या सैन्य सेवा में भर्ती नहीं किया जायेगा और **1975** के एक तीसरे आदेश में तो इसे और छिलके की तरह छुड़ाकर बता दिया कि ऐसे लोग जिनके माँ-बाप दोनों यूरोपियन नहीं हैं, को सेना में बैण्ड आदि बजाने के छोटे-मोटे काम के अतिरिक्त कोई नौकरी नहीं दी जायेगी।[7] दरअसल लार्डक्लाईव के समय में सन् **1776** में सेना में विद्रोह हो गया था और अंग्रेज़ों को लगा कि क्या ठिकाना कहीं आने वाले दिनों में ये एंग्लो-इंडियन सैनिक भी न विद्रोह कर बैठें। सन् **1786** से **1795** यानी दस वर्षों के भीतर-भीतर एंग्लो-इंडियंस की ऐसी बुरी स्थिति हो गयी, जिसकी कल्पना भी वे लोग नहीं कर सकते थे। यहाँ तक प्रतिबंध लगा दिया कि ये कहीं ज़मीन भी नहीं खरीद सकते। इस तरह यह समुदाय खेती करके जीने से भी वंचित कर दिया गया और व्यापार से तो इसे भी जुड़ने ही नहीं दिया गया था। हालांकि अंग्रेज़ों को एंग्लो-इंडियंस की जब-जब आवश्यकता पड़ी तो यूरोपियन खून की दुहाई देकर उनकी सहायता ली और अपना काम निकलते भुल दिया। काफी अपमान और तबाही झेलने के पश्चात् एंग्लो-इंडियंस ने तय किया कि अपने समुदाय की पूरी समस्या ब्रिटिश संसद मंे रखवायी जाय। इसके लिए कलकत्ता के एक

प्रमुख एंग्लो-इंडियन नेता मि.जाॅन विलियम रिकेटस बतौर एजेंट चुने गए कि वे एंग्लो-इंडियंस की कठिनाइयों का मेमोरेंडम इंगलैण्ड ले जाएं। उस मेमोरेंडम का शीर्षक था- 'इस्ट-इंडियंस पेटीशन' पर अंग्रेज़ों ने उस पेटीशन को कूड़ेदान में डाल दिया। इस पर बड़ा हंगामा हुआ और सरकार को यह एक्ट पास करना पड़ा कि भारत की किसी भी नस्ल का व्यक्ति सरकारी नौकरी में नियुक्त हो सकता है, लेकिन ऊँचे पदों की नियुक्ति इंगलैण्ड में होती थी, जो अंग्रेज़ों को ही दी जाती थी। छोटे पदों के द्वार इंडियंस और एंग्लो-इंडियंस के लिए खुले। इसमें एंग्लो इंडियसको भारतीयों की तुलना में अधिक महत्व दिया। क्योंकि अंग्रेज़ी भाषा पर उनका अच्छा अधिकार था। शीघ्र ही भारतीयों ने अंग्रेजी भाषा पर दक्षता प्राप्त कर ली और एंग्लो-इंडियंस को पछाड़ दिया। इस प्रकार दोनों में सरकारी पदों के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया।

एक बार राहत की स्थिति एंग्लो-इंडियंस के लिए तब आयी थी जब ट्रेन और टेलीग्राफ व्यवस्था अंग्रेज़ों ने भारत में शुरू की। आरम्भ में यह काम कठिनाई भरा था। इसलिए फिर इस काम के लिए अंग्रेज़ों ने एंग्लो-इंडियंस को ट्रेन और टेलिग्राफ की नौकरियों में अधिक संख्या में भर्ती किया फिर आगे चलकर स्थिति वही हो गयी। लेकिन स्वतन्त्रता के ऐन पहले भारत में अंतिम उम्मीद के साथ राष्ट्रीय स्तर पर एंग्लो-इंडियंस ने अपने को संगठित किया। फलस्वरूप **1941** ई. में भारत में एक अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में एंग्लो-इंडियंस को मान्यता मिली। लोकसभा से लेकर देश के कई प्रांतों की विधानसभा में इस समुदाय को राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने के लिए आरक्षण का प्रबंध किया गया। आल इंडिया एंग्लो-इंडियन ऐसोसिएशन के प्रेसिडेंट मि.फ्रैन्क एन्थनी

की पहल पर देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने भारत में रह रहे एंग्लो-इंडियंस के अधिकारों की सुरक्षा के लिए संविधान के आर्टिक्ल-**79** के तरह इस समुदाय के दो लोगों को देश की लोकसभा में और एक-एक प्रतिनिधि को प्रत्येक प्रांत की एसेंबली में नामांकित करने का प्रोविजन कराया था**,** जो आज तक चल रहा है। इसी के अन्तर्गत बिहार एसेंवली में एक सीट बगैर चुनाव लड़े एंग्लो-इंडियन समुदाय का एक प्रतिनिधि नामजद किया जाता है। लेकिन इन सारे प्रयासों के बावजूद यह समुदाय मज़बूत नहीं हो सका। भारत में एंग्लो-इंडियंस सदैव इसी ग्रन्थि में फंसे रहे कि उनकी रगों में अंग्रेज़ों का खून है**,** वे शासक वर्ग के लोग हैं। इसीलिए भारत में वे छोटे-मोटे काम करने में हिचकिचाते थे। इसी के चलते मि.ई.टी. मैकलुस्की द्वारा एंग्लो-इंडियंस के लिए झारखंड में बसाया झारखंड गया एक गांव 'मैकलुस्कीगंज' भी 'घोस्ट टाउन' में परिवर्तन होता जा रहा है।[8]

संदर्भः-

1. वीर.आर. गायकवाड, द एंग्लो-इंडियंस, पृ. **13**

2. वही, पृ. **14,15**

3. विकास कुमार झा, मैकलुस्कीगंज, पृ. **47-48**

4. वीर.आर. गायकवाड, द एंग्लो-इंडियंस, पृ. **13**

5. वही, पृ. **20**

6. विकास कुमार झा, मैकलुस्कीगंज, पृ. **49**

7. वीर.आर. गायकवाड, द एंग्लो-इंडियंस, पृ. **21**

8. कथा (यू.के.) **17**वां वर्ष, पृ. **15**